ISSN : 2455-717X

व्युत्पत्ति
वर्ष : 7, अङ्क (02) दिसम्बर-2022

वैयाकरणों द्वारा अभिव्यक्त क्रिया का स्वरूप, भेद एवं उपयोगिता

नीरज*

मनुष्य को व्यवहार के लिए भाषा रूपी उपहार प्रदत्त है, जो अन्य जातियों मे नहीं पाया जाता। भाषा यादृच्छिक ध्वनि प्रतीकों पर निर्भर है। हम लोक में जैसे–जैसे पदार्थ देखते हैं उसके आधार पर नामकरण किये और उनके आधार पर हम आपस में व्यवहार करते है। भाषा में पाये जाने वाले समस्त शब्द भण्डार को प्रातिशाख्य निरुक्त महाभाष्य और अन्य ग्रंथों में चार प्रकार के पदों (शब्दों) में विभक्त किया है–

1. अक्षर समुदायः पदम् अक्षरं वा तच्चतुर्धा, नामाख्यातोपसर्गनिपाताः। वा. प्रा.शा. 8/50
2. तद्यान्येतानि चत्वारि पदजातानि नामाख्याते चोपसर्ग निपाताश्च भवन्ति। निरुक्त 1/1
3. चत्वारि पदजातानि नामाख्यातोपसर्गनिपाताश्च। महा.भा.पस्पशाह्निक

महर्षि पाणिनि ने भी इन चारों प्रकार के पदों का उल्लेख अपनी अष्टाध्यायी में किया है।[1] परन्तु (सुप्तिङन्तं पदम्) 1/4/14 इस सूत्र में सुबन्त (नाम) तिङन्त (आख्यात) को ही पदों के अंतर्गत स्वीकार किया है। उपसर्ग और निपातों को नाम शब्दों के अंतर्गत ही देखा जाता है।

डॉ. जगदीश चतुर्वेदी ने चारों प्रकार के पदों को (सुप्तिङन्तं पदम्) सूत्र में समाविष्ट किया है। परन्तु यह बात प्रयोग सिद्ध है कि उपसर्ग और निपातों

* सहायक प्राध्यापक, संस्कृत विभाग, जयवंती हाक्सर शासकीय स्नातकोत्तर, महाविद्यालय बैतूल म.प्र।

1 शब्दशास्त्रे सुप्पदेन नामोपसर्गनिपातानां तिङ्पदेन चाख्यातस्य बोधो भवति। पद.प.वि. परि.पृ.8

का प्रयोग नाम और आख्यात की तुलना में सीमित है। इसलिए शास्त्रों में अधिक चर्चा नाम और आख्यात पर होती है। लेकिन हम भाषा को विस्तार देने के लिए उपसर्ग और निपातों को भाषा से अलग नहीं कर सकते।

क्रिया–प्राधान्य

भाषा की अभिव्यक्ति में निरकांक्ष साधन वाक्य है और वाक्य निर्माण में क्रिया का ही प्राधान्य होता है।[1] क्योंकि क्रिया साध्य होती है और कारक (नाम) जो द्रव्य हैं वे उनके साधने के लिये होते हैं।

चतुर्विध पदों में क्रिया शब्द स्पष्ट दिखाई नहीं देता परन्तु संस्कृत व्याकरण में आख्यात पद से क्रिया का ही बोध ग्रहण किया जाता है अर्थात् आख्यात पद क्रिया के पर्यायवाची के रूप में प्रयुक्त होता है। आख्यात एवं नाम के लक्षण प्रसंग में निरुक्त में ''भावप्रधानमाख्यातम्''[2] ''सत्वप्रधानानि नामानि''[3] भाव से क्रिया ही द्योतित है।

क्रियासु बहवीष्वभिसंश्रितो यः पूर्वापरीभूत इवैक एव।
क्रियाभिनिर्वृत्तिवशेन सिद्ध आख्यात शब्देन तमर्थमाहुः।। नि.दुर्गा.वृ.1/1/1

जो अनेक क्रियायों मे आश्रित रहता है, जिसमें पूर्व अपर जैसे भाग प्रतीत तो होते हैं परन्तु वास्तव में एक ही है, और जो अनेक क्रियाओं की सिद्धि के अधीन सिद्ध होता है उसको विद्वान् आख्यात शब्द से कहते हैं।

''पूर्वापरीभूतं भावमाख्यातेनाचष्टे व्रजति पचतीत्युपक्रम प्रभुत्यपवर्गपर्यन्तम्''
निरुक्त 1/1

क्रिया के प्रारम्भ से लेकर समाप्ति पर्यन्त जितनी भी छोटी–छोटी क्रियायें कुछ पूर्व एवं कुछ पश्चात् होती है उनके समुदाय को आख्यात कहा है अर्थात् आख्यात क्रिया का वाचक है। महाभाष्यकार ने भाव के स्थान पर क्रिया पद को रखकर और स्पष्ट किया है की आख्यात क्रिया प्रधान होता है अर्थात् आख्यात पद क्रिया का ही पर्यायवाची है।[4]

आचार्य यास्क एवं महाभाष्यकार ने षड्भाव विकारों की चर्चा की है वहाँ पर भी भाव शब्द से क्रिया ही द्योतित है और जो आख्यात है वह भाव प्रधान है

1 तद्यत्रोभे, भावप्रधाने भवतः। निरुक्त 1/1
2 निरुक्त 1/1
3 निरुक्त 1/1
4 क्रियाप्रधानमाख्यातम्। म.भा.1/3/1

अर्थात् क्रिया प्रधान है। फलतः इन प्रसंगों में भी आख्यात पद क्रियावाची शब्दों का वाचक सिद्ध होता है।

1. ''षड्भावविकारा भवन्तीति वार्ष्यायाणिः – जायतेऽस्ति विपरिणमते वर्धते अपक्षीयते विनश्यतीति''[1]
2. 'षड्भावविकाराः' इति ह स्माह भगवान् वार्ष्यायणिः। 'जायतेऽस्ति विपरिणमतेऽपक्षीयते विनश्यति' इति।[2]

किसी भी उत्पन्न पदार्थ में छः प्रकार के क्रिया विकार होते हैं ऐसा वार्ष्यायणि आचार्य मानते हैं।

1. पैदा होता है 2. है 3. बदलता है 4. बढ़ता है 5. घटता है 6. नष्ट होता है।

क्रिया–स्वरूप

'क्रियावचनो धातु' 1/3/1 महाभाष्य के इस लक्षण के पश्चात् ही क्रिया स्वरूप को बतलाया जा रहा है कि क्रिया किसे कहते हैं?

क्रिया क्या है? ईहा। ईहा क्या है? चेष्टा। चेष्टा क्या है? व्यापार। शब्दों के माध्यम से ही शब्दों का निर्देश करते हैं। कोई अर्थरूप पदार्थ नहीं बताते कि इस प्रकार की क्रिया होती है। यह क्रियारूप (पदार्थ) इन्द्रिय से अत्यंत अग्राह्य है। पिण्ड रूप से निदर्शन के लिए अशक्य है। जैसे (उदरस्थ) गर्भ निदर्शित करने के लिए अशक्य है। वह क्रिया अनुमान गम्य है। अनुमान क्या है? सब साधनों (कारकों) के समीप विद्यमान होने पर भी कभी पचति यह कहा जाता है और कभी नहीं कहा जाता। जिसके समीप में होने पर पचति यह प्रयोग होता है, वही क्रिया है अथवा जिसके द्वारा देवदत्त यहाँ होता हुआ पाटलीपुत्र में होता है वही क्रिया है।[3]

क्रियाक्रम–स्वरूप

प्राप्तक्रम विशेषा तु क्रिया सैवाभिधीयते।
क्रमरूपस्य संहारे तत्सत्त्वमिति कथ्यते।।[4]

क्रिया में क्रमरूपता होती है अर्थात् पचति क्रिया को सिद्ध करने के लिए छोटी–छोटी क्रियायें होती हैं जैसे अग्नि जलाना, फूँक मारना, बटलोई को आग पर रखना आदि क्रमरूपता वाली जो क्रिया है वह क्रिया का साध्य रूप है, और जब क्रमरूपता समाप्त हो जाये उस अवस्था को सत्त्व कहते हैं।

1 निरुक्त अध्याय 1 पाद 1
2 महा.भा.1/3/1
3 म.भा.1/3/1
4 वा.पा.तृ.का.जा.समु.का.35

क्रिया बुद्धिस्थ है

गुणभूतैरवयवैः समूहः क्रमजन्मनाम्।
बुद्ध्या प्रकल्पिता भेदाः क्रियेति व्यपदिश्यते।।[1]

एक क्रिया करते समय अनेक लघु क्रियायें की जाती हैं। वहाँ मुख्य क्रिया ही क्रिया पद से कही जाती है। क्रम से उत्पन्न होने वाली गौण क्रियाओं का समूह जो कि बुद्धि द्वारा एकत्व रूप से अभेद रूप से कल्पित रहता है। क्रिया नाम से अभिहित होता है।

बुद्धिस्थ समूह

क्षणनश्वराणां व्यापाराणां वस्तुभूतसमुदायाभावात् बुद्ध्येत्युक्तम्''[2]

क्रिया में उत्पन्न होने एवं क्षण भर में नष्ट होने वाले फूत्कारादि लघु या गौण व्यापारों का पिण्डीभूत समूह न बन सकने के कारण बुद्धि द्वारा कल्पित समूह कहा गया है।

नागेश अनुसार क्रिया–

'सर्वकारकान्वयितावच्छेदक धर्मवती क्रिया''[3]

क्रिया का अन्वय सभी कारकों में होता है।

महाभाष्य का वचन–

कारकाणां प्रवृत्तिविशेषः क्रियानान्तरेण साधनं क्रियायाः प्रवृत्तिरस्ति।[4]

कारकों में प्रवृत्ति विशेष को क्रिया कहते हैं। कारक और क्रिया एक दूसरे से अन्वय भाव से रहते हैं। साधन के अभाव में क्रिया प्रवृत्त नही हो सकती। क्रिया साधन के आश्रित होकर ही व्यवहार में प्रवृत्त होती है।

एक क्रिया को करने के लिए कुछ अवान्तर लघु क्रियायें होती हैं जैसे पचन क्रिया के लिये फूत्कार, बटलोई को चूल्हे पर रखना तो इन लघु क्रिया को किस भाव से अभिव्यक्त किया जाये?

भर्तृहरि की कारिका–

एकदेशे समूहे वा व्यापाराणां पचादयः।
स्वभावतः प्रवर्तन्ते तुल्यरूपं समाश्रिताः।।[5]

---

1 वा.पा.तृ.का.क्रि.समु.का. 4
2 प.ल.म.पृ.40
3 प.ल.म.पृ.39
4 महा.भा.5/3/42
5 वा.प.3/7/50

क्रिया के एकदेश या समूह में भी स्वभाव से तुल्य रूप को प्राप्त हुई पचन आदि क्रियाओं के विभिन्न व्यापारों अर्थात लघु व्यापारों एवं अवान्तर व्यापारों अधिश्रयण एवं फूत्कार आदि के लिए भी पचति पद से व्यवहार होता है। इसी प्रकार के प्रयोग अन्य क्रियाओं में भी होते हैं–

अनन्तरं फलं यस्या कल्प्यते ता क्रिया विदुः।
प्रधानभूता तादर्थ्यादन्यासा तु तदाख्यता।।[1]

क्रिया वो है जिसके घटने के बाद फल की प्राप्ति होती है। ''ओदनं पचति'' यहाँ विक्लेदन फल है। अधिश्रयण आदि जो अवान्तर व्यापार हैं उनके बाद फल प्राप्ति नहीं होती लेकिन अधिश्रयण आदि लघु व्यापार मुख्य क्रिया के लिए ही प्रवृत्त होते हैं अथवा मुख्य क्रिया पचति के ऊपर ही वे आरोपित हो जाते हैं। अर्थात् वे मुख्य क्रिया को साधने के लिए ही प्रवृत्त होते हैं। उसी भाव से वे भी क्रियावाचक माने जाते हैं।

सिद्ध एवं साध्य क्रिया

यावत्सिद्धमसिद्धं वा साध्यत्वेनाभिधीयते।
आश्रितक्रमरूपत्वात् सा क्रियेत्यभिधीयते।।[2]

क्रिया में एक क्रम होता है अर्थात् क्रिया क्रमवती है। क्रिया के दो भेद हैं सिद्ध एवं असिद्ध। सिद्ध क्रिया भूतकालिक होती है एवं असिद्ध क्रिया वर्तमान कालिक एवं भविष्यत् कालिक होती है। सिद्ध एवं असिद्ध क्रियायें जब तक साध्यरूप से कही जायेंगी तब तक वे क्रिया के अन्तर्गत आती हैं। परमलघुमञ्जूषा में नागेश भट्ट ने आचार्य कौण्डभट्ट के मतों के द्वारा सिद्ध और साध्य को परिभाषित किया है–

अत्र केचित् सिद्धत्वं क्रियान्तराकाङ्क्षोत्थापकतावच्छेदकजात्यत्वे सति कारकत्वेन क्रियान्वयित्वे सति कारकान्तरान्वयायोग्यत्वम्''[3]

सिद्धक्रिया की तीन विशेषतायें–

1. दूसरी क्रिया की आकाङ्क्षा के उत्थापक धर्म से युक्त होना सिद्धत्व है।
2. कारक होते हुए क्रिया के साथ अन्वित होने की योग्यता वाले भाव सिद्धत्व धर्म से युक्त होते हैं।

---

1 वा.प.क्रि.समु.का.14

2 वैयाकरणभूषणसार धात्वर्थनिर्णय / वा.प.तृ.क्रि.समु.का.1

3 प.ल.म. धा.नि. पृ.–134

3. अन्य कारक के साथ अन्वय न होने की योग्यता वाले भाव सिद्धत्व धर्म से युक्त होते हैं।

नागेश ने कौण्डभट्ट सम्मत साध्य को परिभाषित किया है –

"साध्यत्वं च क्रियान्तराकाङ्क्षानुत्थापकतावच्छेदकं सत् कारकान्तरा–न्वययोग्यतावच्छेकरूपवत्वम्"[1]

1. साध्यत्व सिद्धत्व से विपरीत स्वभाव वाला होता है।
2. दूसरी क्रिया की आकाङ्क्षा नहीं होती है। क्योंकि साध्य स्वयं क्रिया रूप है। यथा– पचति।
3. साध्य क्रिया कारकों से अन्वित होने की योग्यता वाला होता है।

कौण्डभट्ट ने भी साध्य को परिभाषित किया है –

"तथा च क्रियान्तराऽकाङ्क्षानुत्थापकतावच्छेदक रूपत्वं साध्यत्वम्"[2] मुख्य रूप से साध्य क्रियाओं में अन्य क्रिया की आकाङ्क्षा नहीं रहती है परंतु सिद्ध क्रियायें अन्य क्रियाओं की आकाङ्क्षा रखती हैं।

क्रिया के सिद्ध एवं साध्य भेदों के लिए भर्तृहरि एवं भूषणसार की उक्ति–

साध्यत्वेन क्रिया तत्र धातुरूपनिबन्धना।
सिद्धभावस्तु यस्तस्याः स घञादिनिबन्धनः।।[3]

धातु के स्वरूप से युक्त क्रिया साध्य तथा उसी क्रिया का घञ् आदि प्रत्यय से युक्त रूप सिद्ध कहलाता है। अथवा सभी क्रियायें (सिद्ध अथवा असिद्ध) साधत्व रूप से क्रिया को अभिव्यक्त करती हैं अर्थात् साधती हैं। धातु का अंश साध्य रूप में रहता है और जब घञ् आदि प्रत्यय लग जाते हैं तो वह धातु क्रिया के सिद्ध रूप को कहने में भी समर्थ हो जाती है।

नागेशभट्ट –

तत्र सिद्धत्वं पाक इत्यादौ घञादिवाच्यम्।
साध्यत्वं तु सर्वत्र धातुप्रतिपाद्यम्।।[4]

---

1 प.ल.म. धा.नि. पृ.–138
2 वै.भू.सा.धात्वर्थनिर्णय
3 वै.भू.सा.का. 15 धा.नि./वा.प.3/8/48
4 प.ल.म.धा.निरूपण

सिद्धत्व पाक इत्यादि में घञ् आदि प्रत्ययों के द्वारा वाच्य है। साध्यत्व सभी जगह धातु प्रतिपाद्य है। क्रिया की दो अवस्थाऐं सिद्ध एवं साध्य हैं। सिद्ध अवस्था में क्रिया पूर्ण हो चुकी होती है और साध्य अवस्था में जैसा शब्द से स्पष्ट है क्रिया पूर्ण नहीं हुई होती है। साध्यावस्था में क्रिया की छः अवस्थाओं (भेदों) की बात यास्काचार्य एवं महाभाष्यकार करते हैं।

क्रिया सिद्ध अवस्था में मूर्त रूप में दिखाई देती है और असिद्ध अवस्था में अमूर्तरूप में दिखाई देती है। मूर्त एवं अमूर्त का तात्पर्य यह नहीं है कि साध्य अवस्था में जब वह अमूर्त रहती है तब उसका स्वरूप कुछ दूसरा होता है और सिद्ध अवस्था में मूर्त होने पर भौतिक पदार्थों की तरह उसका प्रत्यक्ष हो सकता है। वस्तुतः क्रिया का मूर्त या अमूर्त होना उसकी पूर्णता और अपूर्णता है। जब क्रिया पूर्ण हो जाती है तब उसे द्रव्यवत् मान लेते हैं।[1] क्योंकि पूर्ण फल को देखकर पूर्ण क्रिया का अनुमान हो जाता है। अपूर्ण अवस्था में क्रिया अद्रव्यवत् होती है क्योंकि फल जो पूर्ण होने पर द्रव्यवत् दिखाई पड़ता है वह भी इस अवस्था में अपूर्ण या अमूर्त ही रहता है। क्रिया का प्रत्यक्ष न तो सत्त्वभाव में रहता है और न असत्त्वभाव में क्रिया प्रत्येक अवस्था में अनुमानगम्य है। जिसका प्रत्यक्ष होता है वह उसका फल है। साध्य क्रिया में फल भी साध्य अवस्था में रहता है और सिद्ध क्रिया में फल सिद्ध या मूर्त अवस्था में होता है।

जैसे ''पचति'' में क्रिया साध्यावस्था में रहती है तो पकाने का फल भी साध्य रहता है। ''पाकः'' में क्रिया की पूर्णता का बोध फल की पूर्णता के कारण ही होता है। क्रिया की पूर्णता और अपूर्णता की अभिव्यक्ति में भी परस्पर भिन्न दो पद्धतियों से काम लिया जाता है। साध्य क्रिया धातु में तिङ् विभक्ति जोड़कर और सिद्ध क्रिया कृत् प्रत्यय जोड़कर अभिव्यक्त होती है। कृत् प्रत्ययों के योग के बाद पुनः रूपतत्त्व सुप् विभक्तियों का योग शब्द में किया जाता है। इस प्रकार जहाँ तिङ् विभक्तियों के योग से धातु आख्यात पद बन जाता है और वाक्य में उसका प्रयोग किया जा सकता है । वही कृत् प्रत्यय से केवल शब्द निर्माण होता है। उसे प्रयोगार्ह बनाने के लिए उसमें फिर सुप् विभक्तियों का योग करना पड़ता है।

सिद्ध क्रिया की अभिव्यक्ति कृत् प्रत्ययों के द्वारा होती है यह ठीक है किन्तु इससे हमें यह निष्कर्ष निकालना भ्रमपूर्ण होगा कि कृदन्त शब्द केवल मूर्त क्रिया की ही अभिव्यक्ति करते हैं। यदि कृदन्त शब्द के लिए प्रयुक्त होने वाली सहायक अर्थात् तिङन्त क्रिया मूर्तता की अभिव्यक्ति नहीं करे तो कृदन्त शब्दों

1 मूर्तं सत्वभूतं सत्वनामभिः। निरुक्त प्रथम अध्याय

से भी क्रिया की साध्यता द्योतित होती है। जैसे – ''पाकः सुन्दरः अस्ति'' में पूर्णता का बोध होता है। किन्तु ''पाकः भवति'' में स्पष्टतः क्रिया अपूर्ण है। उससे जो बोध होता है उसकी व्याख्या इस प्रकार कर सकते हैं– पाक की जो क्रिया पूर्ण होगी वह तत्काल हो रही है अतः हम कह सकते हैं। कुछ शब्द पूर्ण क्रिया का ग्रहण कराते हैं किन्तु क्रिया पूर्ण हो चुकी है या नहीं इसका बोध सहायक क्रिया से होता है।

कृत् प्रत्यय क्त और क्तवतु इन दोनों का प्रयोग भूतकाल की अभिव्यक्ति के लिए होता है। क्त प्रत्यय का प्रयोग अकर्मक धातुओं से भाव और सकर्मक धातुओं से कर्म के भूतकाल के अर्थ के द्योतन के लिए होता है। जैसे – ''तेन स्नातम्'' ''रामेण पठितम्'' आदि। इन प्रयोगों में भाव और कर्म की अभिव्यक्ति है। भूतकाल की अभिव्यक्ति के लिए ही कर्त्तृप्रधान वाक्य में क्तवतु प्रत्यय होता है। जैसे– रामः पठितवान्, बालकः कृतवान् आदि। क्त और क्तवतु में प्रमुख अन्तर कर्ता, कर्म और भाव विषयक है जबकि दोनों भूतकाल को द्योतित करते हैं। यदि सिद्ध क्रिया को क्तवतु कहते हैं उनसे तो वे किसी अन्य क्रिया की आकाङ्क्षा से युक्त होंगे लेकिन ऐसा नहीं होता उन्हें अपने अर्थ को कहने के लिए अन्य क्रिया की आवश्यकता नहीं होती है।

अन्य प्रत्यय हैं जो साध्य और सिद्ध क्रिया की ही अभिव्यक्ति नहीं करते उनसे वे अन्य अर्थों को भी द्योतित करते हैं तो उस अवस्था में वे साध्य क्रिया के सदृश दिखाई पड़ते हैं। जैसे– तव्यत् और अनीयर् प्रत्ययों का औचित्य द्योतन के लिए प्रयोग होता है।

उदा.– दातव्यम्, पठितव्यम्, करणीयम् आदि के देना चाहिए, पढ़ना चाहिए आदि अर्थ है।

''यत्'' प्रत्यय योग्यता अर्थ के लिए प्रयोग में आता है। जैसे– चेयम्, जेयम् चुनने योग्य, जीतने योग्य आदि इन प्रत्ययों से पूर्णता अभिव्यक्त नहीं होती है। ये किन्ही विशेष अर्थों का प्रकाशन करते हैं। सम्पूर्ण कृदन्त शब्द सत्त्व की अभिव्यक्ति नहीं करते कुछ कृदन्त शब्द पूर्णतः सत्त्व (पदार्थ) की अभिव्यक्ति करते हैं लेकिन साथ ही अन्य अर्थों का भी द्योतन करते हैं। जैसे– घञ् और क्तिन् क्रिया की मूर्तता की अभिव्यक्ति करते हैं साथ ही भाव की भी अभिव्यक्ति करते हैं।

''लेखः'' लिखने का भाव और जो लिखा गया हो वह वस्तु, ''पाठः'' पढ़ने का भाव और पढ़ने की वस्तु, इस प्रकार के प्रत्ययों को पूर्ण रूप से सिद्ध क्रिया माना जाता है साथ ही इस प्रकार के कृदन्त शब्दों को सत्त्व की तरह माना जाता

है। सम्पूर्ण कृदन्त शब्दों को सत्त्ववद् मानना असमीचीन प्रतीत होता है।

क्रिया भेद और उनके अर्थ

धातु के प्रमुख रूप से दो अर्थ स्वीकार किये जाते हैं फल और व्यापार लेकिन धातु बिना प्रत्ययों के सहयोग से समस्त अर्थों को देने में सक्षम नहीं होती है अतः हमें प्रत्ययों की आवश्यकता अनिवार्य होती है।

तिङ् प्रत्ययों के चार अर्थ – ''तिङर्थः कर्तृकर्मसंख्याकालाः तत्र कर्तृकर्मणी फलव्यापारयोर्विशेषणे संख्या कर्तृप्रत्यये कर्तरि कर्मप्रत्यये कर्मणि समानप्रत्ययोपातत्वद्।[1]

तिङ् के चार अर्थ होते हैं कर्ता, कर्म, संख्या और काल उनमें से कर्ता व्यापार का विशेषण एवं कर्म फल का विशेषण होता है। कर्तृवाच्य प्रत्यय के होने पर संख्या कर्ता का तथा कर्मवाच्य प्रत्यय के होने पर संख्या कर्म का विशेषण बनती है। काल सदा व्यापार (क्रिया) का विशेषण रहता है। क्योंकि स्वतंत्र रूप से काल का प्रत्यक्ष नहीं किया जा सकता वह अनादि और अनंत है उसके जो भी भेद होते हैं वे लोक की दृष्टि से होते हैं और भेद का आधार क्रिया ही होती है। क्रिया हो रही है, होगी या हो चुकी है वर्तमान, भूत और भविष्यत् कालों के भेद का मुख्य आधार क्रिया होती है। अतः काल को क्रिया सापेक्ष मानना चाहिए। महर्षि पाणिनि ने काल के संबंध में विशेष विवेचन किया है।[2] परन्तु वे काल के ग्रहण का मुख्य आधार लोक को मानते हैं। लेकिन महाभाष्यकार क्रिया सापेक्षता को निर्विवाद स्वीकार करते हैं।

''नान्तरेण क्रियां भूतभविष्यद् वर्तमानकालाः व्यज्यन्ते''

क्रिया यदि नहीं होगी तो काल को हम भूत भविष्य एवं वर्तमान कोटियों में नहीं रख सकते महर्षि पाणिनि ने भी प्रमुखता से सूत्रों के माध्यम से तीनों कालों को स्थान दिया है– ''वर्तमान लट्'' 3.2.123 ''भूते'' 3.2.84 ''भविष्यति गम्मादयः'' 3.3.3 ।

वस्तुतः काल भेद क्रिया के उपाधि भेद से होता है। यदि क्रिया अनवच्छिन्न रूप से होती रहे तो काल विभाजन का आधार समाप्त हो जायेगा। तिङ् प्रत्ययों के द्वारा अभिव्यक्त होने वाले काल का भेद वस्तुतः काल का भेद नहीं होता अपितु वह क्रिया के स्वरूप का ही भेद होता है जिसके आधार पर काल भेद की भी कल्पना कर ली जाती है।

1 वै.भू.सा.धात्वर्थनिर्णय

2 कालोपसर्जने च तुल्यम्– अष्टा. 1.2.56

काल अमूर्त होने से प्रत्यक्ष ज्ञान का विषय नहीं है। जिस प्रकार काल उपाधि पर आधारित है उसी प्रकार उसका ज्ञान भी अनुमानगम्य होता है। प्रत्यक्षगम्य नहीं। महाभाष्यकार ने **"सूक्ष्मोही भावोऽनुमितेन गम्यः"** कहकर काल को अनुमेय ही माना है। क्रिया की क्रमिकता को देखकर काल का अनुमान कर लिया जाता है। सच तो यह है कि जो क्रिया काल के भेद का कारण है। वही उसके अनुमान का आधार भी है।

काल तथा क्रियाभाव के आधार पर आख्यात (तिङन्त क्रिया) जो विभिन्न रूपों में प्रयुक्त होती हैं। पाणिनीय व्याकरण में उन्हें लकार कहते हैं। दस लकार– लट्, लिट्, लुट्, लृट, लेट्, लोट्, लृङ्, लिङ्, लुङ्, और लृङ्।

तिङ् विभक्तियों का विभाजन दस लकारों में काल और क्रियाभाव के आधार पर किया गया है। संस्कृत में काल की अवधारणा समय की सूक्ष्मता पर आधारित नहीं है अपितु उसके विभाजन का आधार क्रिया का प्रत्यक्षत्व और परोक्षत्व अधिक है। इसके साथ ही क्रिया की पूर्णता या अपूर्णता की धारणा भी काल निर्धारण में काम करती है।

वाक्यपदीयम् में काल के तीन भेद

तस्याभिन्नस्य कालस्य व्यवहारे क्रियाकृताः।
भेदा एव त्रयः सिद्धाः याँल्लोको नातिवर्तते।।[1]

क्रियाकृत उपाधि भेद से युक्त जो काल है वह तीन भेदों वाला है– वर्तमान, भूत, भविष्यत्।

महर्षि पाणिनि ने काल के तीन प्रमुख भेद स्वीकार किये हैं। वर्तमान, भूत, भविष्यत्। कौण्डभट्ट आदि विद्वानों ने काल के दो ही प्रमुख भेद माने हैं। अद्यतन और अनद्यतन, इनके भी दो भेद भूत और भविष्य कुल चार भेद। भूत और भविष्य को प्रमुख भेद मानने वाले वर्तमान को प्रमुख रूप से काल में नहीं गिनते। क्योंकि वर्तमान क्षणिक होता है। क्योंकि प्रत्येक वर्तमान क्षण अपनी वर्तमानता के पूर्व भविष्य और एक क्षण के बाद ही भूत हो जाता है। वर्तमान केवल एक क्षण का होता है इस क्षणात्मक वर्तमान का निदर्शन नहीं किया जा सकता। जब तक निदर्शन करेंगे तब तक वह भूत हो जायेगा। कौण्डभट्ट आदि शास्त्रीय दृष्टि से जो भी विवेचन करें परन्तु व्यावहारिक उपयोगिता अधिक नहीं है क्योंकि सामान्य मनुष्य काल को सूक्ष्मता से अनुभव नहीं करता और भाषा में उसकी अभिव्यक्ति

1 वा.प.काल समु.का. 48

भी उस रूप में नहीं करता है। वर्तमान को क्षणात्मक मान लेने पर भाषा में उसकी अभिव्यञ्जना का अवकाश ही नहीं रहेगा। लेकिन व्यवहार में वर्तमान काल का प्रयोग होता है और उसे वक्ता और श्रोता दोनों समझते भी हैं। इसलिए वर्तमान के शास्त्रीय स्वरूप में न जाकर देखना यह है कि लोक में वर्तमान की धारणा क्या है? जिससे वर्तमान काल में प्रयुक्त क्रिया का शाब्दबोध होता है।

वर्तमान की परिभाषा– काल के तीन भेद वर्तमान, भूत, भविष्यत्, भूत और भविष्यत् के भेद होते हैं लेकिन वर्तमान के प्रत्यक्ष स्वरूप के चलते उसमें भेद की सम्भावना नहीं है–

''प्रारब्धापरिसमाप्तित्वं भूतभविष्यद्भिन्नत्वं वा''[1]

क्रिया जब से आरंभ होती है और जब तक समाप्त नहीं होती तब तक वर्तमान काल होता है और वर्तमान की स्थिति भूत और भविष्यत् से भिन्न होती है। वर्तमान काल विषयक व्यवहार के लिए भाषा और वाङ्मय में लट् लकार का प्रयोग होता है।

पाणिनि ने इसे ''वर्तमाने लट्''[2] सूत्र के द्वारा दर्शाया है। लट् प्रत्यय के स्थान पर प्रयुक्त होने वाले जो तिबादि प्रत्यय हैं वे वर्तमान काल विषयक क्रिया की अभिव्यक्ति करते हैं उदा.– पठति, लिखति, गच्छति आदि। इन उदाहरणों में क्रिया जब तक गतिमान है तब तक की क्रिया (भाव) वर्तमान कहलाती है।

भूत की परिभाषा – कौण्डभट्ट– **''विद्यमानध्वंसप्रतियोगित्वं भूतत्वम्''** भूत वह है जिसमें वर्तमान के ध्वंस की प्रतियोगी समयावत्ता होती है। अर्थात् भूत वह काल है जो कभी वर्तमान था लेकिन अब वह भूत है।

भूतकाल के चार प्रकार

1. अद्यतन भूत (सामान्य भूत) लुङ् लकार
2. अनद्यतन भूत (लङ् लकार)
3. परोक्ष भूत (लिट् लकार)
4. हेतुहेतुमद्भूत (लृङ् लकार)

अद्यतन भूत के लिए पाणिनि ने ''लुङ्''[3] सूत्र की रचना की जो 24 घण्टे के अंदर घटित भूत के लिए प्रयोग में आता है। उदा.– देवः अकार्षीत्, देवः अहार्षीत्।

1 वै. भू. सा. लकारार्थ निर्णयः

2 पा. अष्टा.3.2.123

3 पा. अष्टा. 3.2.110

अनद्यतन भूत के लिए पाणिनि ने ''अनद्यतने लङ्''[1] सूत्र की रचना की, अनद्यतन भूत अर्थ के लिए लङ् लकार का प्रयोग होता है। उदा.– अकरोत्, अहरत्।

परन्तु आजकल भाषा में अद्यतन एवं अनद्यतन भूत के लिए सामान्यतः लोगों द्वारा लङ् लकार का ही प्रयोग देख जाता है। जो व्याकरण की दृष्टि से अनुचित है।

परोक्षभूत के लिए पाणिनि ने ''परोक्षे लिट्''[2] लिट् लकार का प्रयोग व्यवहार एवं वाङ्मय में अधिकांशतः ऐतिहासिक भूत तक सीमित देखा जाता है। ''परोक्ष'' से तात्पर्य ऐसा भूत जो इन्द्रिय का विषय न बना हो अर्थात् व्यक्ति की 100 वर्ष की सामान्य आयु स्वीकृत है परिणामतः 100 वर्ष से पहले वाले भूत को परोक्षभूत के अंतर्गत देखा जाता है।

उदा. – रामः रावणं जघान, युधिष्ठिरः राजा बभूव।

हेतुहेतुमद्भूत/हेतुहेतुमद्भविष्यत्

क्रिया की अपूर्णता में लृङ् लकार होता है पाणिनि ने ल्ङ् लकार के लिए **''लृङ् निमित्ते लृङ् क्रियातिपत्तौ''[3] ''भूते च''[4]** सूत्रों की रचना की है। क्रिया की अपूर्णता में हेतुहेतुमद्भावादि जो अर्थ हैं वो इसके लिए कारण हो रहे हों तो भूत एवं भविष्यत् काल को द्योतित करने के लिए लृङ् लकार का प्रयोग होता है।

उदा.– दक्षिणेन चेदगमिष्यत् न शकटं पर्याभविष्यत्।

उदा.– यदि स तेन दृष्टोऽभविष्यत्, तदा अभिक्ष्यत्।

अद्यतन भविष्यत् (लृट् लकार)

सामान्य भविष्यत् के लिए पाणिनि ने ''ल्ट्रृ शेषे च'' सूत्र का निर्माण किया है। लृट् लकार का प्रयोग भाषा में सामान्य भविष्यत् से तात्पर्य अद्यतन एवं अनद्यतन भविष्यत् दोनों के प्रयोग में होता है। उदा. – देवः गमिष्यति, सुरेशः लिखिष्यति।

---

1 पा.अष्टा. 3/2/111
2 पा.अष्टा. 3/2/115
3 पा.अष्टा. 3/3/139
4 पा.अष्टा. 3/3/140

भविष्यत् की परिभाषा– कौण्डभट्ट–**भविष्यत्वञ्चवर्तमानप्रागभावप्रतियोगिसमयोत्पत्तिमत्वम्**[1] अर्थात् वर्तमान में प्रागभाव के प्रतियोगिनी क्रिया की उत्पत्ति का आधारभूत जो काल है उसे भविष्यत् कहते हैं अथवा वर्तमान की सत्ता की उत्पत्ति की योग्यता जिस काल में हो वह भविष्यत्। भूत और भविष्यत् में अंतर है कि भूत में वर्तमान समाप्त हो चुका रहता है और भविष्य में वर्तमान होने की क्षमता रहती है। कह सकते हैं कि विगत वर्तमान भूत और अनागत वर्तमान भविष्यत् होता है।

अनद्यतन भविष्यत् (लुट् लकार)

अनद्यतन भविष्यत् अर्थ के लिए पाणिनि ने ''अनद्यतने लुट्''[2] सूत्र का निर्माण किया है। जो भविष्यत् आज का नहीं है 24 घण्टे के बाद वाले भविष्यत् के लिए लुट् लकार का प्रयोग होता है। उदा. – श्वः कर्ता, श्वो भोक्ता।

भाषा में वर्तमान समय में अद्यतन एवं अनद्यतन भविष्यद् के लिए लृट् लकार का प्रयोग अधिक होने लगा है। लुट् के प्रयोग का किंचित् अभाव देखा जाता है जो कि सैद्धांतिक दृष्टि से उचित नहीं है।

क्रियाभाव

तिङन्त क्रियाओं के छः लकारों के द्वारा काल की अभिव्यक्ति होती है। लृङ् लकार के द्वारा काल एवं भाव दोनों की अभिव्यक्ति होती है। शेष लेट् लोट् और लिङ् लकारों के द्वारा क्रियाभाव की अभिव्यक्ति होती है। हम देखते हैं कि भावों का संकेत जिस सूक्ष्मता से संस्कृत भाषा में होता है काल का उसी सूक्ष्मता से प्रयोग नहीं देखते हैं। इसमें प्रमुख कारण लोगों के द्वारा समय की सूक्ष्मता को गंभीरता से न लेना है।

विधिलिङ् :– पाणिनि ने लिङ् लकार के लिए ''विधिनिमन्त्रणाऽमन्त्रणा–धीष्टसंप्रश्नप्रार्थनेषु लिङ्''[3] सूत्र का निर्माण किया है। विधि अर्थ प्रथम स्थान पर होने से इसे विधिलिङ् भी कहा जाता है। 1. विधि– प्रेरणा 2. निमंत्रण – प्रवृत्त करना। 3. आमंत्रण – कामाचारानुज्ञा (व्यक्ति अपनी इच्छा से किसी कार्य में प्रवृत्त हो तब) 4. अधीष्ट – सम्मान पूर्वक कार्य में प्रेरणा के लिए 5.सम्प्रश्न– संप्रधारण/ प्रश्न पूछने अर्थ में 6. प्रार्थना –प्रार्थना करना। इन भावों की अभिव्यक्ति के लिए विधिलिङ् का प्रयोग होता है।

1 वै.भू.सार लकारार्थनिर्णय

2 पा.अष्टा. 3.3.15

3 पा.अष्टा. 3.3.161

आशीर्लिङ्– विधिलिङ् एवं आशीर्लिङ् के रूपों में स्पष्ट भेद देखा जाता है कि आशीर्लिङ् का प्रयोग आशीर्वाद देने के अर्थ में होता है। पाणिनि ने आशीर्वाद विषयक लिङ् के लिए **"आशिषि लिङ्लोटौ"**[1] सूत्र की रचना की है। उदा. भूयात्, भूयास्ताम्, भूयासुः।

यदि आशीर्लिङ् को ग्यारहवें लकार के रूप में गिनती करें तो अनुचित नहीं है। जब 10 लकारों की गिनती होती है उस स्थिति में लिङ् प्रत्यय की समानता को देखकर हम 10 लकारों की गिनती करते हैं। जबकि रूप भिन्नत्व एवं अर्थ भिन्नत्व को देखते हुए आशीर्लिङ् को ग्यारहवें लकार के रूप में ग्रहण करना चाहिए।

लोट् लकार – महर्षि पाणिनि ने लोट् लकार के लिए **"लोट् च"**[2] सूत्र का निर्माण किया है। विधिलिङ् विषयक छः अर्थों विधि, निमन्त्रण आदि एवं आशीर्वाद अर्थ में भी लोट् लकार का प्रयोग होता है। उदा. पठतु, पठताम् जीवतात् (आशीर्वाद अर्थ) ।

लेट् लकार – पाणिनि ने लेट् लकार के लिए **" लिङर्थे लेट्"**[3] सूत्र की रचना की है। लिङ् के अर्थ विधि, निमन्त्रण आदि एवं हेतु हेतुमद्भाव आदि अर्थों में लेट् लकार का प्रयोग होता है। लेट् लकार का प्रयोग लौकिक भाषा में न होकर वैदिक भाषा तक ही सीमित देखा जाता है।

उदा. – पताति विद्युत्, जोषिषत्, तारिषत्।

भाषा की अभिव्यक्ति में क्रिया रूपों का होना अत्यन्त आवश्यक है। और क्रिया रूपों में भी तिङन्त क्रियापदों की स्थिति अनिर्वचनीय है। ऊपर इन लकारों के जो अर्थ हैं उनसे भिन्न अर्थों में भी इन लकारों का प्रयोग देखा जाता है। इसलिए कौण्डभट्ट ने कहा **"अयञ्च अर्थनिर्देश उपलक्षणम्। अर्थान्तरेऽपिबहुशो विधानदर्शनात्" ।**[4] लेकिन अर्थान्तर बहुत कम मात्रा में दिखाई देते हैं। लगभग सम्पूर्ण अर्थ पाणिनि जी द्वारा निर्दिष्ट प्रक्रिया में समाविष्ट हो जाते हैं।

क्रियाओं के प्रमुखतः चार भेद देखे जाते हैं–

1 पा. अष्टा. 3.3.173
2 पा. अष्टा. 3.3.162
3 पा. अष्टा. 3.4.71
4 वै. भू. सा. लकारार्थनिर्णय

1. सामान्य क्रियाएँ धातु + तिबादि प्रत्यय।
2. गौण क्रियाएँ धातु + सनादि प्रत्यय + तिबादि प्रत्यय।
3. नाम क्रियाएँ नाम + सनादि प्रत्यय + तिबादि प्रत्यय।
4. कृत् प्रत्ययान्त क्रियाएँ धातु + कृत् प्रत्यय + सुप् प्रत्यय।

भाषा एवं साहित्य के मर्म को जानने के लिए क्रिया विषयक स्वरूप को सही से समझने की अत्यंत आवश्यकता होती है। प्रस्तुत लेख में विभिन्न शास्त्रों के अनुसार क्रिया विषयक जानकारी के लिए गंभीर चिंतन प्रस्तुत किया है। निश्चित ही प्रस्तुत लेख भाषा एवं साहित्य में गति प्रदान करेगा।

* * *